AMOGHVARTA
ISSN : 2583-3189

खड़ी बोली गद्य–भाषा की प्राचीन परंपरा और उसका विकास (1800 ई. तक)

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. भवानी प्रधान
हिंदी विभाग
संत गोबिंदराम शदाणी शासकीय कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय
रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

शोध सार

पश्चिमी हिंदी की प्रमुख बोली खड़ी बोली है। इसे हिंदी, कौरवी आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है। 'खड़ी' नाम के संबंध में कई मत व्यक्त किये गये है परंतु अर्थ और व्युत्पत्ति के आधार पर विद्वानों ने दो वर्ग में अपने–अपने विचार एवं मत प्रस्तुत किये हैं, लेकिन खड़ी बोली की प्राचीन परम्परा हमें विरासत में मिली है। वास्तव में मुसलमानों के शासन काल से ही खड़ी बोली का प्रयोग प्रशासनिक और व्यवहार की भाषा के रूप में आरंभ हो गया था। खड़ी बोली से आए आशय यह है कि साधारण रूप से जब हम बोली के अर्थ को 'खड़ी' शब्द में प्रयोग उपयोग करते हैं तो उसके अंतर्गत संसार की सभी वर्तमान भाषाएँ खड़ी बोली कही जा सकती है, क्योंकि भारत एक ऐसा देश है जहाँ विविधता में एकता दिखाई देती है अर्थात् यहां पर अनेक जाति, धर्म एवं समुदाय के लोग निवास करते हैं और अपनी भाषा, संस्कृति खान–पान एवं रीति–रिवाज के प्रति उदारता सौंदर्य और जीवन्तता की सुखद अनुभूति प्राप्त करते हैं।

मुख्य शब्द

खड़ी बोली प्राचीन परम्परा, व्युत्पत्ति, प्रशासनिक समुदाय, संस्कृति.

खड़ी बोली की प्राचीनता को लेकर सर्व प्रथम संदेह का बीज कुछ यूरोपीय विद्वान और उर्दू के जानकार लेखकों ने बोया। इसमें प्रमुख रूप से ग्रियर्सन ने लल्लूलाल की कृति ''लाल चन्द्रिका' (1866) की भूमिका में लिखा है– लल्लू लाल ने प्रेम सागर लिखा तब से एक नई भाषा गढ़ रहे थे।' अर्थात् वास्तव में वह खड़ी बोली के आविष्कारकर्ता का श्रेय अंग्रेजों को देते हुए लिखते हैं कि यह हिंदी जिसे कभी–कभी लोग उच्च हिंदी कहते हैं उन हिन्दुओं की गद्य साहित्य की भाषा है जो उर्दू का प्रयोग नहीं करते। इसका आरंभ हाल ही में हुआ और उसका व्यवहार, गत शताब्दी के आरंभ से अंग्रेजी प्रभाव के कारण होने लगा है। लल्लू लाल जी ने गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से प्रेम सागर लिखकर सब परिवर्तन किये। आगे चलकर ग्रियर्सन के उपरोक्त भ्रामक विचारों का विरोध लगभग सभी भारतीय विद्वानों ने किया। ग्रियर्सन को खड़ी बोली शब्द से इतनी चिढ़ थी कि उन्होंने अपनी पुस्तक में एक बार भी इसका नाम नहीं लिया है। उन्होंने खड़ी बोली के स्थान पर हिन्दुस्तानी नाम का प्रयोग किया है। इससे तात्पर्य यह है कि इस जन प्रचलित भाषा से है जिसे पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोग सामान्यतः व्यवहार में प्रयोग करते हैं।

डॉ. आशा गुप्ता अपने शोध–प्रबन्ध' खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना में खड़ी बोली की प्राचीनता छठी शताब्दी से ही मानती है किन्तु उनके विचार से उसकी झिलमिलाहट बारहवीं शताब्दी में क्रमशः स्पष्ट होती चली गई है, जिसे तत्कालीन

परवानों, दान पत्रों और शिला खंडों में देखा जा सकता है। इस संबंध में डॉ. शितिकंठ मिश्र का मन्तव्य निम्नवत है.....

''प्रायः बारहवीं शताब्दी के राजस्थानी परवानों और दान–पत्रों की भाषा में खड़ी बोली की क्रियाओं ''लाया ''लेवेगा'' ''देवेगा,'' ''करेगा'' ''चला जायगा'' और माल ब्याकी है आदि प्रयोगों का पाया जाना इसकी व्यापकता और लोक प्रियता का प्रमाण है। उपर्युक्त उद्धरण में प्रयुक्त क्रियाएं आज भी इसी अर्थ में प्रयुक्त की जाती है।

श्री अमरचन्द नाहटा ने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति नामक ग्रन्थ में खड़ी बोली का जो उदाहरण दिया, उसे प्राचीनतम माना जा सकता है। यह उदाहरण अपभ्रंश ग्रंथ 'कुवलयमाला' से उद्धत है।

णय–णीति– संधि विग्गह पहुए बहुजंपिता पयती,
तेरे–मेरे–आउति जपिरे मज्झूदेसे य।

उपरोक्त उद्धरण में आये 'तेरे' 'मेरे', 'आओ' शब्द आज भी खड़ी बोली में प्रयुक्त किये जाते हैं। वास्तव में खड़ी बोली मध्यप्रदेश के शिष्टजनों की भाषा होने के परिणामस्वरूप इसका अर्न्तप्रान्तीय प्रचार हो रहा था। मुस्लिम शासकों और उसकी संस्कृति का प्रभाव मध्य प्रदेश की भाषा पर पड़ने से यह शासक एवं शासितों के बीच सम्पर्क भाषा का स्थान लेने लगी थी जिसका उत्तरोत्तर प्रचार सैनिकों और शासन सम्बंधी कार्यों में होने लगा था।

हिंदी की बोलियों में खड़ी बोली की सीमा सबसे दीर्घ है।

खड़ी बोलीः इसके नामकरण हिंदी के सर्वमान्य रूप से खड़ी बोली का नाम दिया गया है।

हिंदी भाषा के खरेपन के कारण खरी बोली कहा गया और 'खड़ी बोली' नाम दिया गया। कुछ विद्वानों का मत है कि शब्द–भण्डार के प्रमुख वर्ग क्रिया की संरचना को नामकरण का आधार बनाया गया होगा अर्थात् हिंदी की सभी क्रिया की रचना में अंतिम ध्वनि ''आ? की मात्रा 'ा' खड़ी पाई होती है जैसे जाना, आना, धोना, खाना, चलना, फिरना, हँसना आदि। समस्त क्रिया–शब्द के अंत में 'ा' खड़ी पाई का प्रयोग है। इसी के आधार पर 'खड़ी पाई का प्रयोग है। इसी के आधार पर खड़ी बोली के नामकरण की संभावना व्यक्त की गई है।

खड़ी बोली क्षेत्र

खड़ी बोली का क्षेत्र मुजफ्फर नगर और दिल्ली के आस–पास का माना गया है। सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि 'खड़ी बोली' के रूप में प्रयुक्त हिंदी भाषा का स्वरूप उक्त क्षेत्र के किसी भी गाँव में प्रयोग नहीं होता। गहन चिंतन से यह तथ्य सामने आता है कि हिंदी भाषा के विस्तृत क्षेत्र और उसकी विविधता को देखकर जो एकरूपता देने का प्रयास किया गया। उसमें इन क्षेत्रों की बोलियों को आधार बनाया गया। खड़ी बोली का उक्त क्षेत्र वास्तव में पश्चिमी हिंदी को कौरवी बोली का क्षेत्र है। इस प्रकार खड़ी बोली के विषय क्रम में कहा जा सकता है कि कौरवीं बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों के लोगों बोधगम्यता के लिए जो संकल्पनात्मक रूप विकसित हुआ, उसे खड़ी बोली का नाम दिया गया है।

खड़ी बोली का प्रभाव धीरे–धीरे विस्तृत होता जा रहा है। वर्तमान में मेरठ, मुजफ्फर नगर, बिजनौर, सहारनपुर, हरिद्वार, गाजियाबाद, मुरादाबाद और दिल्ली तक देखी जा सकती है। हरियाण के करनाल, यमुना नगर, पानीपत, सोनीपत के कुछ भागों में खड़ी बोली का स्पष्ट–प्रभाव मिलता है।

खड़ी बोली का उद्‌भव

हिंदी में गद्य रचना के विकास काल से खड़ी बोली के प्रभावी रूप में विकास हुआ है। आदि कल में डिंगल–पिंगल में रचना होती थी तो मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा काव्य–रचना की आधार भाषा थी आधुनिक युग में यही रूप साहित्य सृजन का आधार बना है। हिंदी भाषा में एकरूपता और बोधगम्यता लाने का प्रयास लम्बे समय–समय चल रहे थे। जैन सिद्ध और नाथ साहित्य में खड़ी बोली का प्रारंभिक रूप देखने को मिलता है। इसी प्रकार संत कवियों की भाषा में भी खड़ी बोली का प्रभाव प्रमुख रूप से हुआ है।

''पीछे लागा जाइथा, लोक बेद के साथ
आगे ते सतगुरू मिला, दीपक दीया हाथ।''

इस दोहे में शब्दों का तद्‌भव रूप और कारक चिह्नों का प्रयोग खड़ी बोली के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। राम प्रसाद निरंजनी कृत अट्ठारवीं शताब्दी की भाषा योग वशिष्ठ खड़ी–बोली की प्रथम प्रमाणिक रचना मानी गई है। इसी प्रकार सत्रहवीं

शताब्दी में रचित जटमल कृत गोरा बादल की कथा खड़ी बोली की पहली रचना मानी गई है।

भारतेन्दु हरीशचंद्र में हिंदी के प्रयोग में तेजी लाने के लिये सन् 1868 में 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका सन् 1873 में हरीशचंद्र मैगजीन नामक मासिक पत्रिका निकला बाद में इसका नाम बदलकर हरीश चंद्रिका कर दिया। इसके बाद भारतेन्दु हरीश चंद्र ने खड़ी बोली में अनेक नाटकों की रचना की और निबंध लिखे। खड़ी–बोली में अनेक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होनी शुरू हुई। खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने का श्रेय पं. प्रताब नारायण मिश्र, बाल कष्ण भट्ट, पं.राधाकृष्ण गोस्वामी आदि को जाता है। उन्होंने साहित्य और पत्रकारिता में खड़ी–बोली को महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। सन् 1893 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना की जिससे खड़ी बोली को सुदृढ आधार मिला।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है। खड़ी बोली और साहित्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना उत्तर भारत की अन्य आधुनिक भाषाओं का है। साहित्यिक भाषा के रूप में उसकी प्राचीन परम्परा थी और इसका विस्तार मात्र दिल्ली–आगरा तक नहीं वरन् पटना व आरा तक था। इस भाषा का आविष्कार नहीं किया गया, तो यह 'बहता जल' था।

संदर्भ सूची

1. शकल, जयन्त (1999) *हिंदी गद्य भाषा का विकास (भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता के संदर्भ में).* कला प्रकाशन, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ. 36 से 38।
2. प्रसाद, सरयू (2023) *भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा.* दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, नारायणी, नई दिल्ली, पृ. 68–83।
3. भाटिया, चन्द्र कैलाश (2009) *हिंदी भाषाः विकास और स्वरूप.* साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, पृ. 68–83।

––==00==––